आनन्द संघ सोमरसेट (पश्चिमी) दक्षिण अङ्ग्रीका
दिसम्बर १७, २००२

सन्देश संख्या ५३

क्रियायोग दीक्षा के पूर्व प्रारम्भिक उपदेश का सारतत्व

क्रियायोग क्या नहीं है :–

यह कोई शारीरिक कसरत या आत्म–सम्मोहन का कार्यक्रम नहीं है। यह शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का दावा करने वाली किसी अधिकार प्राप्त संस्था का धोखा भी नहीं है। यह तान्त्रिक, मान्त्रिक अथवा यान्त्रिक बाजीगरी भी नहीं है। यह धूर्त एवं मतलबी, कट्टर एवं काल्पनिक विश्वास–पद्धति की मगजधुलाई भी नहीं है। यह कहानियों, अनुमानों या चमत्कार–प्रदर्शन के माध्यम से क्षणिक राहत, सुरक्षा और सान्त्वना की खोज नहीं है। न तो यह कोई नैतिक आज्ञा–पत्र है और न ही मूर्खतापूर्ण उपदेश। न तो यह ऊँचे–ऊँचे बहुप्रचारित मुहावरे हैं और न ही 'पावन' अनुसरण या विरोध। यह कोई दार्शनिक ज्ञान या मनोवैज्ञानिक तकनीक नहीं है। यह कोई मत, पन्थ या सम्प्रदाय भी नहीं है। न तो यह कोई दिखावा है और न ही किसी प्रकार की पूर्वधारणा। यह आत्मानुभूति के छद्म आवरण में अहं की उपासना, उसका विस्तार या उसका उन्नयन भी नहीं है। यह पालन–पोषण, पढ़ाई–लिखाई तथा रोजमर्रा के जीवन से उत्पन्न अनुबंधित प्रतिक्रियाओं के उड्गान का पोषक भी नहीं है। यह सामाजिक सम्बन्धों और उत्तरदायित्वों से पलायन नहीं है। यह विशि वेश–भूषा, केश–विन्यास या उपाधियाँ धारण करना भी नहीं है। यह हिंसा, विद्वेष, व्यसन, आसक्ति, पावन एवं खूबसूरत झूठों का पुलिंदा, महत्वाकांक्षा, भय, ईर्ष्या, अनेक प्रकार की पराश्रयता, आदि नहीं है। यह ज्योतिषियों और भाग्यवाचकों की मानसिक घूसखोरी या भयादोहन भी नहीं है।

क्रियायोग क्या है :–

यह विचार प्रवाह की सततता, जो मन्दचित्तता का परिचायक है, से मुक्त होकर शान्ति एवं संतुष्टि में होना है। इस योग जीवन में विचार समय–समय पर असततता में अर्थात् तात्कालिक आवश्यकतानुसार उद्दीपनों और चुनौतियों की उपयुक्त अनुक्रिया के रूप में प्रकट होते हैं और आवश्यकता पूरी होने पर फिर वापस शान्ति (निर्विचार की अवस्था) में लौट जाते हैं। जीवन, जिजीविषा एवम् इसकी रचनात्मक चितिशक्ति (सीमित बुद्धि नहीं) शरीर को संचालित करती हैं और इसलिए इस अवस्था में शरीर विभेदकारी चित्तवृत्ति (मन और अहंकार) के प्रभाव एवं पूर्वाग्रहों के कब्जे में नहीं रहता है। तब शरीर विलोम–मुक्त स्पष्ट चिदाकाश की गरिमा एवं मर्यादा से युक्त होता है। ऐसे में संकीर्ण अहमन्यता से उत्पन्न विकृति, भ्रान्ति और निराशा के लिए कोई जगह नहीं होती है। तब जीवन सरलता एवं सादगी, दानशीलता एवं करुणा से पूर्ण हो जाता है। यह विषयासक्ति पर नहीं बल्कि तन्मात्राओं पर, लोभ और तुष्टीकरण पर नहीं बल्कि आवश्यक आवश्यकताओं पर आधारित होता है। ऐसी स्थिति में जीवन तालव्य क्रिया, श्वास और प्रश्वास के संतुलन (अन्तर्मुखी प्राणायाम), नाभि में ब्रह्माण्डीय ध्वनि की अनुगूंज (नाभि क्रिया), काम ऊर्जा के साथ किसी प्रकार का हस्तक्षेप किए बगैर कामुकता के निषेध (महामुद्रा), शरीर के अवरोधन एवं पूर्वाग्रहों, दबावों एवं दमनों से मुक्त (खाली) करने वाली प्रक्रिया (योनि मुद्रा) के द्वारा प्रायः अनायास ही निर्देशित होता है। तब सहज रूप से व्यसनों और द्वन्द्वों की समाप्ति हो जाती है। तब शरारती ध्याता (मन और अहंकार) के बिना ध्यान हो जाता है। ऐसी समाधि मधुमेह अथवा थकान जनित गहरी मूर्च्छा की स्थिति नहीं, बल्कि साम्यावस्था की जबरदस्त ऊर्जा, अकर्ता की गहन प्रज्ञा तथा प्रत्यक्षबोध की शुद्ध क्रियाओं में स्थित होना है न कि अनुबंधनों, निष्कर्षों, अटकलबाजियों और घटिया एवं क्षुद्र ''मैं'' के द्वन्द्वों से उत्पन्न विभाजक गतिविधियों में। समाधि में जीवन शिव की द्रवीभूत ऊर्जा का एक स्वतःस्फूर्त नृत्य है न कि अनेक प्रकार की कल्पित समस्याओं को उत्पन्न करने वाले क्षुद्र मन की 'सुनियोजित' योजना। समाधि निःसंग हुए बिना एकान्त में होना है, अकेलेपन से रहित एकाकित्व है, लौकिक अस्तित्व की आपाधापी के बावजूद उस 'पवित्रता' के साथ जुड़े रहना है।

क्रियायोग के स्वाध्याय में हम धर्मग्रन्थों का अध्ययन नहीं करते हैं, बल्कि अहमन्यता रूपी ग्रन्थ, अहंकार की कूट रचना को पढ़ने का प्रयास करते हैं। मनुष्यों ने अपने अन्दर अपनी सुरक्षा एवं सान्त्वना

के लिए अनेक छवियों और मनोवैज्ञानिक निवेश का घेरा बना रखा है जो मात्र धार्मिक, राजनैतिक एवं व्यक्तिगत हैं। ये प्रतीकों, अवधारणाओं एवं विश्वास–पद्धतियों के रूप में सामने आते हैं। दुर्भाग्य से इन छवियों से सृजित बोझ, बन्धन, कट्टरता एवं संघर्ष, हमारी मगजधुलाई के उड्गान, हमारे दोषपूर्ण पालन–पोषण, पढ़ाई–लिखाई एवं मानसिक निवेश हमारे विचारों, रिश्तों और दैनिक जीवन पर हावी रहते हैं।

छवि एवं छाप हमारी समस्याओं के मूल कारण हैं क्योंकि वे अनेक प्रकार के विभेद एवं विरोध, विकृति एवं द्वन्द्व को प्रोत्साहित करते हैं। क्रियायोग का स्वाध्याय और तापस इस शरीर में आमूल परिवर्तन एवं रहस्योद्घाटन, विलय एवं संपूर्णता,

रासायनिक परिवर्तन तथा चैतन्य की उच्चावस्था उत्पन्न करता है जो पूर्ण एवं पवित्र है। मानव की अद्वितीयता उसकी सतही और विभेदकारी उपाधियों एवं पहचान में नहीं होती है, बल्कि गुणों के समूह (सत, रज, तम) अर्थात् अहंकार के गलाघोंटू पकड़ से पूर्ण मुक्ति में होती है। स्वाध्याय की शुरूआत रूचि एवम् अरूचि, दिशा–निर्देशन एवं विरूपण, दण्ड के भय और पुरस्कार की आशा तथा किसी उद्देश्य के बिना तटस्थ अवलोकन से होती है। स्वाध्याय में हम मानवमात्र के साथ अपने संबधों का परीक्षण अपने–आप से निम्नाँकित प्रश्नों के द्वारा करते हैं :–

१. क्या हम वास्तव में सहयोगी हैं या मात्र प्रच्छन्न प्रतियोगी?

२. क्या हम वास्तव में मित्र हैं या अन्दरूनी शत्रु?

३. क्या हम वास्तव में सहकर्मी हैं या मात्र सह शत्रु?

४. क्या हम वास्तव में प्रेम करते हैं अथवा मात्र आत्म–तुष्टि, परस्पर निर्भरता, प्रभुता, भावुकता, आसक्ति, संवेग आदि की लालसा में जीते हैं?

स्वाध्याय अवधारणाओं, ज्ञान, पुस्तकों, धर्मग्रन्थों, सिद्धान्तों, शिक्षाओं तथा हर प्रकार की मज़हबी ठगी के साथ हमारे संबंधों का भी परीक्षण करता है। स्वाध्याय में हम परम्पराओं, राष्ट्रीयता, क्षेत्रीय जुड़ाव, भाषायी लगाव, अर्जित सम्पत्ति, पद, प्रास्थिति, प्रसिद्धि, विशि रूचि, जाति, वर्ग, वंश, पन्थ, सम्प्रदाय, उपासना–पद्धति, गुरू, पुरोहित, इस प्रकार की अन्य अवधारणाओं के साथ अपने संबंधों की जाँच–पड़ताल करते हैं। साथ ही साथ, हम किसी मनोवैज्ञानिक, लोकप्रिय पुस्तक, मृत धारणा, ऊँचे शब्दाडम्बर, तथाकथित धर्मगुरूओं या धर्ममाताओं के माध्यम से नहीं बल्कि स्वयं के द्वारा और स्वयं के लिए अपने मन के विषयों तथा अवयवों को प्रत्यक्षतः समझने का प्रयास करते हैं।

क्रिया–अभ्यास से उत्पन्न सहजावस्था में मन शहद की तरह स्थित होता है, जल की तरह नहीं। शहद को कितना भी हिलाया डुलाया क्यों न जाए वह शीघ्र ही अपनी स्थिरावस्था में वापस लौट आता है जबकि जल इस प्रकार के विक्षोभ से उथल–पुथल का शिकार हो जाता है। हम विचार के प्रवाह को रोकते नहीं बल्कि विचारों के प्रवाह के प्रति निःस्पृह रहते हैं। सहजावस्था में हर चीज लय में प्रकट होती है और लुप्त हो जाती है। हम ध्यान करते नहीं हैं और इसे होने से रोकते भी नहीं हैं।

क्रियायोग 'चाहने–पाने' का योग नहीं है जो मात्र दासत्व है। यह तो त्यागने–छोड़ने का योग है जो हमें बंधनमुक्त और प्रेम से परिपूर्ण कर देता है। इस अवस्था में विश्व की सारी शान्ति, सुरक्षा और सम्पदा हमारी अपनी हो जाती है। धर्मों के बनाए भगवान् मन की उपज हैं किन्तु क्रियायोग का ईश्वर 'निर्मन' से उपजा काव्य है। तथाकथित धर्म के सहारे जीना धारणाओं और विश्वास–बंधनों के बोझ तले घिसटना है, किन्तु क्रियायोग से युक्त जीवन अन्तर्दृष्टि एवं परमानन्द से विभोर एक नृत्य है। क्रियायोग में 'हम क्या हैं' इस पर विश्वास करना बंद कर यह जानने लगते हैं कि 'हम कुछ भी नहीं हैं'। क्रियायोग के फलस्वरूप सभी इच्छायें शान्त हो जाती हैं, यहाँ तक कि 'इच्छाहीनता' की इच्छा (अनपेक्षा की अपेक्षा) भी नहीं रहती। मृत्यु के बाद पुनः देहधारण का हिन्दू सिद्धान्त भय को छिपाने और तुच्छ 'मैंपन' के भाव को बनाये रखने की चाल मात्र है। क्रियायोग में प्रत्येक सुबह व्यक्ति का पुनर्जन्म एवं पुनरवतरण होता है। जीवन की कभी मृत्यु नहीं होती, मृत्यु तो मात्र भौतिक शरीर और मन की होती है। क्रियायोग में मुक्ति न तो मनमानेपन की तुच्छ अभिव्यक्ति है और न ही आत्मसंयम का अभाव। यह महती विनम्रता है क्योंकि यहाँ अज्ञान एवम् अहंकार तथा छवियों एवं छापों से पूर्ण मुक्ति है। यह सोचना लोगों की मूर्खता है कि

चूँकि वे विकल्पों में से किसी एक या अनेक को चुन सकते हैं इसलिए वे स्वतंत्र हैं। विकल्प तो बंधनकारी तथा भ्रम एवम् अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले हैं। 'स्वतंत्र इच्छा' नाम की कोई चीज नहीं होती है। इच्छा, जो 'अहंकार' का ही दूसरा सुविधाजनक नाम है, एक बंधन है। इच्छा से तो मुक्त (स्वतंत्र) होना है।

क्या बंधनकारी है तथा क्या मुक्ति प्रदान करने वाला, इसे हम स्वाध्याय में इस प्रकार समझते हैं :—

क्रमांक	बन्धनकारी	मुक्तिदायक
१	स्वप्नलोक	समझदारी
२	विचार	सत्य
३	पूर्वधारणा	प्रत्यक्षबोध
४	विश्लेषण	जागरूकता
५	धारणा	अन्तर्दृष्टि
६	ग्रस्तता	खुलापन
७	मनोवेग	शून्यता
८	लालसा	प्रेम
९	बुद्धि	चितिशक्ति
१०	मूर्खता	निष्कपटता
११	भावुकता	मानसिक संतुलन एवं समझदारी
१२	क्रोध	नम्रता
१३	प्रार्थना	गहन ध्यान
१४	अन्वेषण	दर्शन
१५	स्वार्थपरता	निःस्वार्थता
१६	विषयासक्ति	तन्मात्रा बोध
१७	कामुकता	काम ऊर्जा
१८	मन ि	नर्मन (जीवन)

स्वाध्याय अनुभूत और यथार्थ आत्मतत्व की प्रकृति को भी उद्घाटित करता है जो इस प्रकार है :—

क्रमांक	अनुभूत आत्मतत्व	यथार्थ आत्मतत्व
१	विखण्ड	अखण्ड
२	कपट	करुणा
३	अंधकार	प्रकाश
४	आकांक्षा	आत्मा
५	असत्य	सत्य
६	मानना	जानना
७	विचार	निर्विचार
८	अशान्ति	प्रशान्ति
९	मिथ्याभिमान	सत्यनिष्ठा
१०	दुर्गुण	सद्गुण
११	वाग्जाल	विवेक
१२	संग्रहण	आरोहण
१३	विभ्रान्ति	विभु
१४	बनना	होना
१५	तनाव	तथागत
१६	विश्वासबंधन	मंगलमय मुक्ति
१७	अनुभव	अस्तित्व
१८	अपेक्षा	अमृतत्व
१९	वाक्चातुर्य	विभूति

२०	दृकिोण	दृान्त
२१	मुखौटा	माधुर्य
२२	प्रवचना	प्रबोध

क्रियायोग सत्–चित्–आनन्द की ओर ले जाता है। हम इस संसार में अतिथि की तरह जीते हैं। हम शान्त जागरूकता में विकल्प रहित सचेतनता में रहते हैं। हम सुख, जो दुःख का विलोम नहीं है, की स्थिति में होने के लिए भोग–विलास से दूर रहते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से क्रियायोग अत्यन्त प्राचीन है। इसका उल्लेख पतंजलि के योगसूत्र में पाया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता भी इस पवित्र प्रक्रिया की ओर संकेत करती है। यह दुर्योधन से अर्जुन और अर्जुन से कृष्ण तक की यात्रा है, अर्थात् 'मनोविकृति' (मूर्खता) से 'मन' और तदुपरान्त 'निर्मन' (परम प्रज्ञा) तक की यात्रा। उन्नीसवीं शताब्दी के गृहस्थ संत लाहिड़ी महाशय (सन् १८२८–१८९५) ने हिमालय के एक रहस्यमय संत, जिन्हें वे बाबाजी (भारत में धर्म पुरूषों को बाबाजी तथा धर्म नारियों को माताजी कहने की प्रथा है) कहते थे, के साथ एक आकस्मिक एवं चमत्कारिक मिलन के पश्चात् इसे पुनर्जीवित किया। इससे संबंधित शिक्षा वंश–परम्परा तथा अनेक शिष्य परम्पराओं के माध्यम से भी प्रवाहित होती रही है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य के शिष्यों में से एक, जो परमहंस योगानन्द (१८९३–१९५२) के नाम से विश्व विख्यात हैं,
ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'योगी कथामृत' में एक ऐसे महान् आध्यात्मिक शक्ति के रूप में लाहिड़ी महाशय, जिन्होंने वाराणसी में एक अज्ञात एवम् अनाम गृहस्थ योगी के रूप में निवास करते हुए इस धरा को गौरवान्वित किया, का वृत्तान्त उद्घाटित किया है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य के एक अन्य शिष्य परमहंस हरिहरानन्द का अभी दो सप्ताह पूर्व ९६ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया। लाहिड़ी महाशय के एक प्रपौत्र एवं वंश–परम्परा के वर्तमान शिक्षक सन् १९३९ में जन्मे श्री शिवेन्दु लाहिड़ी अपने शिक्षार्थियों के आमन्त्रण पर बिना किसी औपचारिक संगठन या संस्था के पूरे विश्व में भ्रमण करते रहते हैं। लाहिड़ी महाशय ने आध्यात्मिक संदर्भों में संगठन को यह कहते हुए हतोत्साहित किया था कि सत्य जब संस्था, जिसमें छोटे–बड़े का भेदभाव जनित अहंकार सूक्ष्म रूप से पोषित होता रहता है, द्वारा संचालित होता है तब वह मृत एवं पाखण्डपूर्ण लम्बे–चौड़े भाषणों तक सिमट कर विकृत हो जाता है। वंश–परम्परा का मात्र एक पारिवारिक मंदिर है जिसमें कोई पदानुक्रम नहीं है। क्रियायोग की खोज हिन्दुओं द्वारा की गयी थी, किन्तु यह उनका एकाधिकार नहीं है। इसका संबंध सम्पूर्ण मानवता से है।

।। लाहिड़ी महाशय मानवता के प्रेमपात्र होएँ – जय सद्गुरू ।।